नवंबर १९९५ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

उद्‌बोधन

मेरे प्यारे साधक-साधिकाओ,

आओ, सत्य का सम्यक दर्शन करें –

१. दुःख आर्यसत्य का सम्यक दर्शन करें।

२. दुःख-समुदय आर्यसत्य का सम्यक दर्शन करें।

३. दुःख-निरोध आर्यसत्य का सम्यक दर्शन करें।

४. दुःख-निरोधगामिनी-प्रतिपदा आर्यसत्य का सम्यक दर्शन करें।

विपश्यना साधना द्वारा अंतर्मुखी होकर इन चारों आर्यसत्यों का सम्यक दर्शन करें। जो कुछ बाहर है वह भीतर का ही प्रक्षेपण है। अतः भीतर की ओर झांकें। इस साढ़े तीन हाथ की काया के भीतर सभी लोक समाये हुए हैं। लोकों की उत्पत्ति समायी हुई है। लोकों का निरोध समाया हुआ है। लोकों के निरोध का मार्ग समाया हुआ है। इसका साक्षात्कार करें।

चार आर्यसत्यों का यह साक्षात्कार ही सम्यक दृष्टि है, विद्या है, बोधि है, ज्ञान है, आलोक है, विमुक्ति है। इन चार आर्यसत्यों के साक्षात्कार से वंचित रह जाना ही मिथ्या दृष्टि है, अविद्या है, अज्ञान है, अंधकार है, बंधन है।

इन चार आर्यसत्यों का सम्यक दर्शन हमारे लाभ के लिए है, अर्थ के लिए है, हित के लिए है, सुख के लिए है, दुःखों के नितांत निरोध, उपशमन, निर्मूलन के लिए है, मुक्ति, मोक्ष, निर्वाण के लिए है।

अतः साधको, आओ, चारों आर्यसत्यों का सम्यक दर्शन करें।

कल्याण मित्र,
स. ना. गो.

चार आर्यसत्य

यह दुःख है। जीवन के इस प्रथम कटु सत्य को जब तक हम गहराई से जान-समझ नहीं लेते, स्वयं अनुभव नहीं कर लेते, तब तक उससे मुक्त होने के लिए प्रयत्नशील ही नहीं हो सकते।

यह दुःख का कारण है। जीवन के इस द्वितीय गंभीर तथ्य को जब तक हम जान-समझ नहीं लेते, स्वयं अनुभव नहीं कर लेते, तब तक दुःख की सच्चाई को जान कर भी उसके निवारण के लिए हम कुछ कर नहीं सकते।

यह दुःख का निवारण है। जीवन के इस तृतीय आशाप्रद सत्य को जान-समझ कर और स्वयं अनुभव करके ही हम सब प्रकार की निराशाओं से मुक्त होते हैं। जिस दुःख का कोई कारण हो उस कारण के निवारण में ही दुःख का निवारण समाया हुआ है। यह तीसरा सत्य दुःख-संतप्त मानव के लिए असीम आशाओं का मंगल आश्वासन लिए हुए है।

यह दुःख-निवारण का मार्ग है। जीवन के इस चतुर्थ कल्याणकारी सत्य को हम भलीभांति जान-समझ लें और उसका पालन कर लें तो सचमुच अपने समस्त दुःखों से मुक्ति पा जायँ। शील, समाधि और प्रज्ञा का यह मंगल-मार्ग ही एक ऐसी रामबाण औषधि है जो कि दुःख के सभी कारणों पर गहरा प्रहार करती है। जहां दुःख के कारण जड़ से उखड़ने लगे वहां दुःख टिक ही कैसे सकेगा? कारणों की सारी जड़ें उखड़ जायेंगी तो समस्त दुःखों से स्वतः विमुक्ति हो ही जायेगी।

इन चारों सत्यों को आर्य कहा गया है। इसलिए आर्य कहा गया है कि इन सच्चाइयों से उत्तम अन्य कोई सच्चाइयां हैं ही नहीं और इसलिए भी कहा गया है कि इन चारों सत्यों को अनुभव के क्षेत्र में स्वयं जान लेने वाला व्यक्ति सहज ही आर्य बन जाता है याने पवित्र बन जाता है, संत बन जाता है, उत्तम बन जाता है, मुक्त बन जाता है।

यह दुःख है, यह दुःख का कारण है, यह दुःख का निवारण है और यह दुःख के निवारण की विधि है। इन चारों आर्यसत्यों को जिस व्यक्ति ने सम्यक रूप से जान लिया उसने अपने हित, सुख, अर्थ और लाभ की सारी बात जान ली और जिसने इन्हें नहीं जाना उसने और बहुत कुछ जान लेने पर भी अपने सही हित-सुख की बात नहीं ही जानी। ये चारों सच्चाइयां जीवन-जगत की सच्चाइयां हैं, ठोस धरती की सच्चाइयां हैं। सब कुछ यथार्थ ही यथार्थ है। इसमें कहीं कपोल-कल्पना नहीं, कहीं कोरा बुद्धि-किलोल नहीं, कहीं भटका देने वाला अंधविश्वास नहीं, कहीं उद्विग्न कर देने वाला मिथ्या भावावेश नहीं, कहीं भयसंकुल मिथ्या-मान्यता नहीं। जो कुछ है वह यथार्थ है। मनुष्य की अपनी ही अनुभूतियों के बल पर स्थापित है, स्वीकृत है। एक सामान्य व्यक्ति द्वारा स्वयं अपने ही श्रम से, अभ्यास से, सहज अनुभवगम्य है।

ये सच्चाइयां केवल श्रुतमयी प्रज्ञा पर ही आधारित नहीं, केवल चिंतनमयी प्रज्ञा पर ही आधारित नहीं, बल्कि इन दोनों के साथ-साथ अभ्यासजन्य साधना के धरातल पर, स्वानुभूति की भूमि पर प्रतिष्ठित, भावनामयी प्रज्ञा पर आधारित हैं। सुने-सुनाये ज्ञान और चिंतन-मनन द्वारा उपलब्ध हुए ज्ञान की यहां अवहेलना नहीं की गयी है परंतु इनसे भी अधिक महत्त्व स्वानुभूतियों के बल पर प्राप्त हुए ज्ञान को दिया गया है। **श्रुतमयी** प्रज्ञा के आधार पर हम जान लेते हैं कि ये-ये जीवन के दुःख हैं। **चिंतन-मननमयी** प्रज्ञा द्वारा हम इन दुःखों की गंभीरता को स्वीकारते हुए यह महसूस करते हैं कि ये सत्य भलीभांति परिज्ञेय हैं, समझ लेने योग्य हैं। अतः स्थूल-स्थूल दुःखों की मोटी-मोटी जानकारी तक ही सीमित न रह कर गंभीर गहराइयों तक सूक्ष्म-सूक्ष्म दुःखों का भी पूरा ज्ञान प्राप्त कर लेना आवश्यक है। ऐसा हम चिंतनमयी प्रज्ञा द्वारा समझते हैं और फिर **भावनामयी** प्रज्ञा द्वारा साधना के अभ्यास की भूमिका पर उतर कर स्वयं अपनी अनुभूतियों के बल पर इन दुःखों की गहनता का अनुभव करते हैं, भलीभांति उन्हें परिज्ञात करते हैं।

श्रुतमयी प्रज्ञा द्वारा हम यह जान लेते हैं कि सभी दुःखों के ये मूलभूत कारण हैं। फिर चिंतनमयी प्रज्ञा द्वारा यह भी महसूस करते

हैं कि इन दुःखों से हमें छुटकारा पाना चाहिए, दुःखों के इन कारणों को उखाड़ फेंकना चाहिए, इनका प्रहाण कर लेना चाहिए। और फिर भावनामयी प्रज्ञा द्वारा साधना के अभ्यास की भूमिका पर उतर कर हम उन समस्त कारणों का प्रहाण कर लेते हैं, उन्हें खत्म कर लेते हैं।

श्रुतमयी प्रज्ञा द्वारा हम यह जान लेते हैं कि इन दुःखों के निरोध की भी एक अवस्था है, इसके नितांत निवारण की भी एक स्थिति है। फिर चिंतन-मननमयी प्रज्ञा द्वारा हम यह महसूस करते हैं कि ऐसी दुःख-निरोधक स्थिति का हमें स्वयं साक्षात्कार करना ही चाहिए, स्वयं अनुभव करना ही चाहिए। और फिर भावनामयी प्रज्ञा द्वारा साधना के अभ्यास की भूमिका पर उतर कर हम सचमुच उस दुःख-निरोधक स्थिति का स्वयं साक्षात्कार कर लेते हैं, मुक्ति-रस का स्वयं आस्वादन कर लेते हैं।

श्रुतमयी प्रज्ञा द्वारा हम यह जान लेते हैं कि दुःखों का निरोध करने के लिए यह मंगल मार्ग है। फिर चिंतन-मननमयी प्रज्ञा द्वारा हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हमारे सच्चे कल्याण के लिए इस मंगलपथ का हमें स्वयं अनुसरण करना ही चाहिए। इस विधि का स्वयं अभ्यास करना ही चाहिए। और फिर भावनामयी प्रज्ञा द्वारा साधना के धरातल पर उतर कर स्वयं अभ्यास करके हम इस विधि का लाभ उठाते हैं। हम दुःख-विमुक्ति का स्वानुभव कर लेते हैं।

इस प्रकार इन चारों आर्यसत्यों को पढ़-सुन कर श्रुतमयी प्रज्ञा द्वारा जान लेते हैं, अपनी बुद्धि की कसौटी पर कस कर चिंतन-मननमयी प्रज्ञा द्वारा इनके महत्त्व को भलीभांति समझ लेते हैं और शील, समाधि तथा ज्ञानमार्ग की साधना करते हुए भावनामयी प्रज्ञा द्वारा अभ्यास के बल पर स्वयं अपना मंगल साधते हैं। जब तक इन चारों सच्चाइयों को इस प्रकार तेहरा करके कुल बारह प्रकार से जान न लें, समझ न लें और अनुभव न कर लें तब तक हम अपने सही मंगल-कल्याण से दूर ही भटकते हैं। इसीलिए यह कहना अत्यंत सार्थक है कि जिसने इन चार आर्यसत्यों का भली-भांति साक्षात्कार कर लिया वह कृतकृत्य हो गया। उसे जो करना था सो कर लिया, अब और कुछ करने को बाकी नहीं रह गया। जो पाना था सो पा लिया, अब और कुछ पाने को बाकी नहीं रह गया। परंतु जो इन चार कल्याणकारी सच्चाइयों से वंचित रह गया, वह और बहुत कुछ जान-समझ कर भी अनजान ही रह गया, और बहुत कुछ प्राप्त करके भी निर्धन ही रह गया।

किसी भी कुशल चिकित्सक के लिए यह आवश्यक है कि वह रोगी का सही रोग पहचाने, उस रोग का निदान करके उसके सही कारण को पहचाने और फिर उचित उपचार करके उस कारण का निर्मूलन कर, रोगी को रोगमुक्त कर दे। इन चार बातों को छोड़ कर अन्य किसी असंबंधित ऊलजलूल बात में उलझ जाने वाला चिकित्सक रोगी का हितैषी नहीं होता।

कोई व्यक्ति सम्यक संबोधि प्राप्त करता है याने पूर्णतया सही ज्ञान प्राप्त करता है तो इन चार कल्याणकारी सच्चाइयों की जानकारी ही तो प्राप्त करता है और एक कुशल भिषक की तरह, वैद्य की तरह न केवल अपना इलाज करके स्वयं रोगमुक्त होता है बल्कि अन्य अनेक रोगियों को भी उपचार का सही साधन बता कर उनके रोगमुक्त होने में सहायक बनता है। रोग और रोग के उपचार को छोड़ कर, और कोई बिना सिर-पैर की बातें करना सचमुच बेमाने ही तो है। इसीलिए भगवान ने कहा कि मैं तो एक भिषक मात्र हूं, वैद्य मात्र हूं और वैद्य को रोगी के रोग का उपचार करने के अतिरिक्त अन्य निरर्थक बातों से क्या लेना देना! और फिर कहा कि मैं तो केवल मात्र दुःख और दुःख-निरोध ही सिखाता हूं और कुछ नहीं। कितना ठीक कहा उन्होंने कि जिस रोगी को विषैला तीर लगा हो और वह मरणांतक पीड़ा से व्याकुल हो तो उसके उपचार के लिए आये हुए वैद्य का यही धर्म है कि उस तीर को तुरंत बाहर निकाल कर रोगी को पीड़ा से मुक्त करे। परंतु यदि वह नासमझ रोगी इस बात का हठ करता रहे कि पहले यह मालूम करो कि जिसने तीर मारा वह लंबा है या ओछा है, काला है या गोरा है, मोटा है या पतला है तो यह निरर्थक जिज्ञासा उसके हित-सुख के लिए नहीं होगी। उसके हित-सुख की बात तो यही है कि उसकी असह्य पीड़ा का कारणस्वरूप यह जो विषैला तीर है इसे निकाल कर रोगी को शीघ्र पीड़ा-मुक्त किया जाय। उस करणीय काम को नहीं करके अन्य थोथी बातों में उलझना निर्रथक ही तो है, फ़जूल ही तो है, अहितकर ही तो है, हानिकारक ही तो है।

सुदूर अतीत से लेकर आज तक न जाने कितने लोग ऐसी ही निरर्थक बातों में उलझते रहे हैं और अपनी तथा औरों की हानि करते रहे हैं। यह दुनिया कब बनी? कैसे बनी? इसे किसने बनाया? इसका अंत होगा या नहीं? होगा तो कब होगा? कैसे होगा? आज तक कितने तत्त्व-चिंतकों ने और दार्शनिकों ने इस संबंध में न जाने कितने कल्पना के घोड़े दौड़ाये हैं। भिन्न-भिन्न लोगों की भिन्न-भिन्न कल्पनाएं और बहुधा परस्पर विरोधी भी। एक को प्रिय लगने वाली कल्पना दूसरे को उतनी ही बेहूदी लगे। तिस पर मुसीबत यह कि हर एक का आग्रह कि मेरी ही कल्पना सही मानी जाय। यदि कोई न माने तो लड़ाई हो, झगड़े हों, विग्रह-विद्वेष हो, युद्ध-संघर्ष हो। निश्चय ही ऐसी भिन्न-भिन्न परस्पर विरोधी कल्पनाएं हमारे दुःखों का निरोध नहीं कर सकती। जीवन-जगत के यथार्थ दुःखों के शमन के लिए हमें कल्पना का शकी उड़ान त्यागनी होगी, यथार्थ की ठोस भूमि पर कदम रख कर ही चलना होगा। जो सच्चाई है वह कितनी ही कटुक्यों न हो, अप्रिय क्यों न हो, उसकी यथार्थता स्वीकार करनी ही होगी। जीवन-जगत को मिथ्या, माया, निःसार कह कर उससे मुँह मोड़ लेना शुतुरमुर्ग की तरह सच्चाई से दूर भागना है। समस्या से दूर भाग कर किसी ने आज तक उसका समाधान नहीं पाया। जीवन के दुःखों को भुलाने की चेष्टा में आंख मूंद कर रखने वाले अपने आपको कुछ समय के लिए धोखे में भले भरमाये रखें परंतु दुःख की नितांत विमुक्ति से वंचित ही रह जाते हैं। फोड़े की पीड़ा से घबरा कर कोई अफीम का नशा कर ले तो यह अल्पकालीन आत्म-छलना ही होगी। उसका सही उपचार तो इसी बात में है कि उस अनपके हुए फोड़े को पकाये और पके हुए फोड़े को चीर कर उसमें की सारी पीप और सारी गंदगी निकाल बाहर करे। यह काम कितना ही अप्रिय क्यों न हो परंतु उस रोग से मुक्ति पाने के लिए आवश्यक है, अनिवार्य है। किसी भी समझदार आदमी की समझदारी इसी बात में है कि वह समस्या से दूर नहीं भागे,

बल्कि एक ठोस यथार्थवादी की तरह सही वैज्ञानिक ढंग से उस समस्या का सामना करे, उसे समझे। उसकी यथार्थता से मुँह नहीं मोड़े बल्कि उसे स्वीकार करे और धैर्यपूर्वक उसके निराकरण के लिए यथोचित प्रयत्न करे। यही चार आर्यसत्य हैं – समस्या, समस्या का मूलभूत कारण, समस्या का निवारण और समस्या के निवारण का तरीका।

अपने रोग को जानने के लिए और उस रोग के निवारण का तरीका जानने के लिए और उस तरीके को अपना कर रोगमुक्त होने के लिए हमें किसी संप्रदाय-विशेष में दीक्षित होने की कतई जरूरत नहीं है। न दुःख-संतप्त होना किसी संप्रदाय-विशेष का एकाधिकार है और न ही दुःख-विमुक्त होना। अज्ञानतावश दुःख में उलझे रहना प्राणी मात्र का स्वभाव है। मनुष्य इसका अपवाद नहीं। परंतु मनुष्य की यही विशेषता है कि वह अपने बुद्धि-बल से, श्रम-बल से, साधन-बल से, अपने दुःख को जान सकता है, दुःख के कारण को पहचान सकता है और फिर दुःख दूर कर सकने के तरीके को जान कर और उसे अपना कर दुःख दूर कर सकता है। यह विशेषता मनुष्य की ही है, इतर प्राणियों की नहीं। परंतु यह विशेषता मनुष्य मात्र की है, किसी मनुष्य-विशेष की नहीं। बस मनुष्य होना चाहिए, चाहे वह काला हो या गोरा, पीला हो या गेहुँआ, लंबी नाक वाला हो या चपटी नाक वाला, बड़ी तिरछी आंखों वाला हो या छोटी चुँधियाती आंखों वाला, इस जाति का हो या उस जाति का, इस वर्ग का हो या उस वर्ग का, इस बोली भाषा का हो या उस बोली भाषा का, इस देश का हो या उस देश का, इस काल का हो या उस काल का। हां, यह अलग बात है कि अनेक मनुष्य अपने सही दुःख को समझे बिना, दुःख के सही कारण को समझे बिना, दुःख-निवारण के सही तरीके को समझे बिना और उस तरीके को सही प्रकार से अपनाए बिना भिन्न-भिन्न प्रकार की असंबंधित कल्पनाओं में, अटकलपच्चियों में, रूढ़ियों में उलझे रहते हैं और इस कारण दुःख-मुक्त नहीं हो पाते।

तो आओ, सभी सांप्रदायिक घेरों की गिरफ्त से मुक्त रहते हुए जीवन-जगत के सत्य धर्म-स्वभाव को जानें, समझें। कल्पनाओं का सहारा छोड़ कर यथार्थ के धरातल पर चारों आर्यसत्यों को जानें, समझें और साधना के क्षेत्र में उनका स्वयं साक्षात्कार कर जितना-जितना हो सके उतना-उतना दुःख-विमुक्ति का लाभ हासिल करें।

स्थूल संवृत्ति सत्य को देखते-देखते ही हम सूक्ष्म पारमार्थिक सत्य को देखने लगेंगे। परमार्थ सत्य को स्वयं देख कर, जान कर, प्राप्त कर, साक्षात्कार करके और उसमें विहार करके ही हम समस्त दुःखों की बेड़ियों को नष्ट कर सकेंगे, भव का क्रम तोड़ सकेंगे।

मंगल मित्र,
स. ना. गो.

(नये साधकों के लाभार्थ अगस्त, ७२ के लेख का पुनर्मुद्रण)

विपश्यना केंद्र समाचार

धम्मालय, कोल्हापुर

महाराके दक्षिणी क्षेत्र में स्थित 'दक्खिन विपश्यना अनुसंधान केंद्र' के नवनिर्मित केंद्रपर पहला दस दिवसीय विपश्यना शिविर पू. गुरुजी के सान्निध्य में ३१ अक्टूबर को लगा। यहां पर फिलहाल लगभग १०० साधकोंके लिए सुविधापूर्वक ध्यान करसकनेलायक व्यवस्था हो पायी है परंतु पू. गुरुजी के सान्निध्य में अधिक से अधिक लोगों को धर्मलाभ प्राप्त हो सके, इसके लिए तंबू आदि लगा करसवा दो सौ साधकोंके लाभार्थ सुविधा जुटायी गयी। शिविर के दौरान पू. गुरुजी के तीन प्रवचनों की एक शृंखला भी कोल्हापुर शहर में आयोजित की गयी, ताकि जो लोग शिविर का प्रत्यक्ष लाभ नहीं ले सके, वे धर्म-श्रवण कर भविष्य में किसी शिविर का लाभ ले सकें। ऐसे लोगों के लाभार्थ ही इस शिविर के तुरंत बाद पू. गुरुजी की अनुपस्थिति में १३ से २४ नवंबर तक पुनः एक और शिविर आयोजित किया गया है।

धम्मसरोवर, धुळे

महाराके उत्तर-पश्चिम का यह शांतिप्रिय क्षेत्र विपश्यना केंद्र के बहुत ही अनुकूल है। इस स्थान पर धर्मोदय इस शांति को और प्रगाढ़तर ही करेगा। केंद्रके लिए लगभग २५ एकड़ जमीन खरीदी गयी है। निर्माणकार्य बहुत तेजी से हो रहा है। यहां के उत्साही साधकोंने सामूहिक साधना, एक, तीन व दस दिवसीय शिविरों का सतत कार्यक्रमनिश्चित करके लोकमंगल का धर्म-मार्ग प्रशस्त कर दिया है।

धम्मनाग, नागपुर

यहां पर नागपुर शहर के बाहर लगभग चालीस एकड़ जमीन खरीदी गयी है और उसके आधे हिस्से में केंद्र का निर्माणकार्य तीव्रगति से चल रहा है। शेष आधी जमीन विपश्यी साधकों के निवास-संकुल के प्लाट्स के रूप में वितरित की गयी है। अनेक साधकोंने शहर के कोलाहलभरे प्रदूषित वातावरण से हट कर इस शांत सुरम्य स्थान पर अपना एक अलग स्थायी निवास बना कर, उसी क्षेत्र में रहते हुए साधना करनेकी भावना से प्लाट ले लिये हैं।

यहां पर उद्घाटन के रूप में पहला एक दिवसीय शिविर २८ अक्टूबर को लगा। २९ को स्थानीय साधकों ने मिलकर एक धर्मसम्मेलन करके आगे की योजनाओं पर विचार-विमर्श किया। अत्यधिक व्यस्तता के कारण फिलहाल पू. गुरुजी अभी यहां नहीं पधार सके हैं, परंतु निर्माणकार्य पूरा हो जाने पर कभी मंगल मैत्री देने अवश्य ही पधारेंगे।

धम्मसलिल, देहरादून

अनादिकाल से अनंत ऋषियों की तपोभूमि हिमालय की सुरम्य घाटियों में उ. प्र. के पश्चिमी क्षेत्र में स्थित इस केंद्रपर तपने का आनंद ही कुछ और है। प्राथमिक निर्माणावस्था में यहां साधना-कक्ष, पुरुष-महिला स. आचार्यों व धर्मसेवकों के निवास, २१-२१ साधक पुरुष-महिलाओं के निवास, भोजनालय और रसोईघर का निर्माण कार्य हो चुका है। अतः पहला शिविर ९ से २० नवंबर तथा दूसरा २४ नवंबर से ५ दिसंबर तक लगातार आयोजित करके क्षेत्र के साधकों और प्रबंधकोंने अपने अदम्य उत्साह और कार्यकुशलता का ही परिचय दिया है।